International Journal of Sanskrit Research 2015; 1(3): 25-26

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2015; 1(3): 25-26
© 2015 IJSR
www.sanskritjournal.com
Received: 27-02-2015
Accepted: 16-03-2015

इन्दु डिमोलिया
एम. फिल्. शोध छात्रा विशिष्ट संस्कृत अध्ययन केन्द्र जवाहरलाल नेहरु विश्वविद्यालय नई दिल्ली–११००६७

Correspondence
इन्दु डिमोलिया
एम. फिल. शोध छात्रा विशिष्ट संस्कृत अध्ययन केन्द्र जवाहरलाल नेहरु विश्वविद्यालय नई दिल्ली–११००६७

वैश्विक शान्ति का अथर्ववेदीय स्वरूप

इन्दु डिमोलिया

सृष्टि के प्रारम्भ से ही मनुष्यों का अपने से भिन्न एवं इतर जीव आदि के साथ संघर्ष रहा है पग–पग पर पल–पल में संघर्ष है। व्यक्ति–व्यक्ति में संघर्ष है, वर्ग–वर्ग में संघर्ष है, समाज–समाज में संघर्ष है, राष्ट्र–राष्ट्र में संघर्ष है, संघर्ष की आशंका राष्ट्रों के गुट निर्माण कर रही है, पर यह संघर्ष प्राणी वर्ग तक ही सीमित है, प्राकृतिक क्षेत्र में यह संघर्ष दिखाई नहीं देता। यहाँ द्यौ शान्त है, अन्तरिक्ष शान्त है, पृथ्वी शान्त है, जल शान्त है, औषधि वनस्पतियाँ शान्त है, विश्व देव शान्त है, ब्रह्म शान्त है–अशान्त है तो वही एक प्राणी वर्ग। इस अशान्ति में स्वार्थों का संघर्ष निहित है। इस वृत्ति ने समग्र मानवों को और मानव ही नहीं, समग्र प्राणियों को संघर्षरत कर दिया है, एक–दूसरे का जानी दुश्मन बना दिया है। अब जिधर देखो उधर ही समग्र विश्व पर इस प्रवृत्ति का प्रहार हो रहा है। मनुष्य अशांति पर शांति की विजय के लिए हजारों सालों से प्रयास करता आ रहा है और हमारे वेद शान्ति एवं विश्वशान्ति का संदेश देने वाले प्राचीनतम ग्रंथ हैं। भारत का आदर्श ही है–

"सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग् भवेत् ।।"

चारों वेदों में से अथर्ववेद को भूत, वर्तमान और भविष्य के लिए प्रकाशस्तम्भ माना जाता है। समाज, देश व राष्ट्र का क्या स्वरुप होना चाहिए? देश को कैसे उन्नत व प्रगतिशील बनाया जाए? जीवन में आध्यात्म की क्या आवश्यकता है? राष्ट्रीय व विश्व के हित के लिए क्या कर्तव्य हैं? देश, राष्ट्र व समाज में शान्ति एवं समता कैसे स्थापित की जाए आदि सवालों का उत्तर अथर्ववेद से प्राप्त होता है। अथर्ववेद में एकता व प्रेम के माध्यम से शांति स्थापित करने की बात कही गई है। पं० हरिशरण सिद्धान्तालंकार द्वारा रचित अथर्ववेदभाष्य में २०वां सूक्त इसी को सूचित करता है–

अदारसृद्भवतु देव सोमास्मिन्यज्ञे मरुतो मृडता नः।
मा नो विददभिभा मो अशस्तिर्मा नो विदद् वृजिना द्वेष्या या ।।[1]

इस मन्त्र के माध्यम से कहा गया है कि हमारा जीवन यज्ञमय हो, हम कभी फूट के मार्ग पर न चलें। हम पराभव, अपकीर्ति व कुटिलता से बचें अर्थात् हमसे किसी का अनिष्ट न हो एवं हमारा प्रत्येक कार्य मेल को बढ़ाने वाला हो।

"इतश्च यदमुतश्च यद्वधं वरुण यावय।
वि महच्छर्म यच्छ वरीयो यावया वधम् ।।"[2]

अर्थात हम द्वेष से दूर हों। द्वेष से ऊपर उठकर आन्तर व बाह्य वध से आक्रान्त न हों।
अथर्ववेद में एक और जगह कहा गया है कि मेरी बोलचाल तथा मेरे कर्म माधुर्य को लिये हुए हों। मेरे चित्त में भी कभी कटु–विचार न आयें। मैं हमेशा मधुर बोलूँ और मेरी पहचान ही मधुमय हो जाए–

1) **"जिह्वाया अग्रे मधु मे जिह्वामूले मधूलकम्**
ममेदह क्रतावसो मम चित्तमुपायसि ।।""[3]
2) **"मधुमन्मे निक्रमणं मधुमन्मे परायणम्**
वाचा वदामि मधुमद्भूयासं मधुसन्दृशः"[4]

परिवार को सबसे महत्वपूर्ण सामाजिक इकाई माना गया है। इसलिए, समाज में शान्ति की कामना सबसे पहले परिवार के लिए की गई है। अथर्ववेद में कहा गया है कि बच्चे मां–बाप के अनुकूल अच्छा आचरण करें, उनकी इच्छा के विरुद्ध कार्य न करें, पति–पत्नी के बीच मधुर वार्तालाप हो, भाई–भाई से न झगड़े और बहन का बहन से वैर न हो। माता अपने सन्तान के कल्याण के लिए तीन बातों से बचे–(क) गाली देने से, (ख) हिंसात्मक कर्मों से, (ग) अन्य के आनन्द को नष्ट करने से–

"या शशाप शपनेन याघं मूरमादधे ।
या रसस्य हरणाय जातमारेभे तोकमत्तु सा ।।"[5]

इससे अग्रिम मन्त्र में परस्पर लड़ने–झगड़ने से बचने के लिए निर्देशित किया गया है कि सन्तान को उत्तम बनाने के लिए आवश्यक है कि गृहपत्नियां परस्पर लड़े नहीं और हिंसात्मक कर्मों में भी प्रवृत न हों–

"पुत्रमत्तु यातुधानीः स्वसारमुत नप्त्य ∫ म् ।
अधा मिथो विकेश्यो३ वि घ्नतां यातुधान्यो३ वि तृह्यन्तामराय्य ∫:"[६]

जिससे कि सबके बीच सद्भाव बना रहे, आपसी सद्भाव से परिवार में शान्ति बनी रहे, परिवार के कारण समाज में, समाज के कारण देश (राष्ट्र) में एवं राष्ट्र के कारण विश्व में शान्ति बनी रहे।

इस प्रकार से अथर्ववेद में समाज को उन्नत बनाने एवं शान्ति बनाए रखने के लिए सामाजिक संगठन, सद्भाव व एकत्व भावना, अतिथि सत्कार एवं सारी दिशाओं को ही अपना मित्र बनाने की भावना है।[७]

इसके अलावा अथर्ववेद में आर्थिक स्थिति की सुदृढता के माध्यम से भी शांति बनाई जा सकती है एवं अथर्ववेद में गुरु–शिष्य संबंध एवं चरित्र निर्माण पर विशेष बल दिया गया है जिससे कि लोग चरित्रवान बनें एवं समाज में सकारात्मक एवं शान्तिप्रद वातावरण स्थापित हो।

अथर्ववेद में विविध वैज्ञानिक विषयों की ओर भी संकेत किया गया है। इन विषयों पर आवश्यक अनुसंधान अपेक्षित है। जैसे–भौतिकी, रसायन–विज्ञान, वनस्पति–विज्ञान, भूगर्भ विज्ञान, वृष्टिविज्ञान, गणित, स्वप्न–विज्ञान एवं प्रदूषण–निवारण भी मन्त्रों के माध्यम से बताया है। जिससे कि वैश्विक शान्ति परिलक्षित होती दिखती है।

अथर्ववेद में आचार शिक्षा व नीतिशिक्षा से सम्बद्ध सैकडों मन्त्र हैं, जिनमें सत्य, अहिंसा, सदाचार, मित्रता, सन्मार्ग पर चलना, पुरुषार्थ, तेजस्विता, मधुर वचन आदि सद्गुणों का वर्णन है एवं दुर्गुणों के त्याग का भी विस्तृत वर्णन है।

अथर्ववेद के एक मन्त्र में सबको प्रेम की नज़रों से देखने का निदर्शन प्राप्त होता है–

"प्रियं सर्वस्य पश्यत उत शूद्रे उतार्ये"[८]

अथर्ववेद में जहाँ भौतिक सुखों की प्राप्ति के लिए अनेक उपाय बताए गए हैं, वहाँ आत्मिक उन्नति के महत्व पर विशेष बल दिया गया है। इसमें सत्य, अहिंसा, तप, अस्तेय, संयम आदि पर विशेष बल दिया गया है।[९]

उपर्युक्त विवेचन से ज्ञात होता है कि अथर्ववेद आधुनिक सन्दर्भों में भी देश, जाति, समाज व विश्व के लिए अत्यन्त उपादेय ग्रन्थ है। यह भौतिक उन्नति के साथ पारमार्थिक उन्नति का भी साधन प्रस्तुत करता है। अथर्ववेद में केवल व्यक्ति की उन्नति का ही विवेचन नहीं है, अपितु विश्वशान्ति और विश्वबन्धुत्व का महान सन्देश प्रसारित किया गया है। जब तक समाज में शान्ति नहीं रहेगी तब तक मनुष्य को आत्मविश्वास और आत्मविकास का अवसर नहीं मिल सकता है। शान्ति का अर्थ निष्क्रिय और अकर्मण्य जीवन नहीं है। ऐसे जीवन में भी संघर्ष होते हैं। संघर्ष ही जीवन है और संघर्षहीन जीवन तो मौत है। यानी संघर्ष आत्मविकास के लिए होना चाहिए न कि मानव अहंकार की तुष्टि के लिए होना चाहिए। प्राकृतिक विपदाओं से जूझना अथवा लडना भी संघर्ष कहलाता है। किन्तु यह संघर्ष मानव मूल्यों के लिए लाभदायक सिद्ध हुआ है न कि खतरनाक। अतः शान्तिमय जीवन एक गतिशील एवं क्रियाशील जीवन है। अतः सम्पूर्ण मानव–जाति को शान्ति के लिए प्रयत्नशील होना चाहिए।

आज अमेरिका, इराक, पाकिस्तान आदि इससे दूर होते जा रहे हैं और इसीलिए वे आन्तरिक और बाह्य कलह से स्वयं भी शिकार हो रहें और दूसरों को भी कर रहे हैं। किन्तु भारत प्राचीन काल से ही प्रकृति प्रदत्त सम्पदाओं की रक्षा शान्तिमय तरीके से करता रहा है। यही कारण है कि वैदिक धर्म ने सार्वभौम शान्ति का स्वप्न देखा और उद्घोषित किया–

"उदार–चरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम"

आज भी इस वाक्य के द्वारा आत्मीयता के साथ–साथ आर्थिक तथ्यों की ओर भी इशारा किया जा रहा है। विश्व एकता एवं वैश्विक शान्ति की लक्ष्यपूर्ति अहिंसा के द्वारा ही संभव है। भारत में प्रचलित जैन धर्म, बौद्ध धर्म एवं हिन्दू धर्म ने अहिंसा पर विशेष बल दिया है।

आज सबल राष्ट्रों को सोचना चाहिए कि महाशक्ति होना सिर्फ इस बात से तय नहीं होता है कि हम क्या करते हैं। हमें अपने तौर–तरीके ऐसे अपनाने होंगे कि अन्य राष्ट्रों के लोग हमें इज्जत से देखें अर्थात् हम पर उनका विश्वास हो कि हमारा ख्याल रखा जा रहा है। वे शक अथवा संदेह न करें तभी विश्व बंधुत्व एवं वैश्विक शान्ति की बात सार्थक सिद्ध हो सकती है। अन्तिम में विश्व बन्धुत्ववादी दृष्टिकोण को उद्घोषित करती हुई वैदिक ऋचाओं की इन पंक्तियों के साथ वैश्विक शान्ति एवं सौहार्द की कामना करते हैं–

संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम
देवा भागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते ।।
समानो मन्त्रः समितीः समानी समानं मनः सह चित्तमेषाम्
समानं मन्त्रमभिमन्त्रये वः समानेन वो हविषा जुहोमि ।।
समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति ।।[१०]

सन्दर्भः

1 अथर्ववेदभाष्यम् (पं० हरिशरण सिद्धान्तालंकार), प्रथम काण्ड, सूक्त सं०२०, मंत्र सं०१, पृ० सं०४५

२ अथर्ववेदभाष्यम् (पं० हरिशरण सिद्धान्तालंकार), प्रथम काण्ड, सूक्त सं०२०, मंत्र सं०३, पृ० सं०४६

३ अथर्ववेदभाष्यम् (पं० हरिशरण सिद्धान्तालंकार), प्रथम काण्ड, सूक्त सं०३४, मंत्र सं०२, पृ० सं०७२

४ अथर्ववेदभाष्यम् (पं० हरिशरण सिद्धान्तालंकार), प्रथम काण्ड, सूक्त सं०३४, मंत्र सं०३, पृ० सं०७२

५ अथर्ववेदभाष्यम् (पं० हरिशरण सिद्धान्तालंकार), प्रथम काण्ड, सूक्त सं०२८, मंत्र सं०३, पृ० सं०६०

६ अथर्ववेदभाष्यम् (पं० हरिशरण सिद्धान्तालंकार), प्रथम काण्ड, सूक्त सं०२८, मंत्र सं०४, पृ० सं०६०

७ सर्वा आशा मम मित्रं भवन्तु। अथर्ववेद १९/१५/६

८ अथर्ववेद १९/६२/१

९ अथर्ववेद, अध्याय ८ में ब्रह्म व अध्यात्मचर्चा शीर्षक।

१० ऋग्वेद, १०/१९१/२–४